International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 06-10-2020; Accepted: 21-10-2020; Published: 07-11-2020
www.hindijournal.com
Volume 6; Issue 6; 2020; Page No. 13-14

हिन्दी आलोचना में द्विवेदीयुगील आलोचना का महत्व

प्रफुल्ल कुमार
शोध छात्र, सहायक प्राध्यापक, बीएनएमयू, सहरसा, बिहार, भारत

प्रस्तावना

हिन्दी आलोचना के उद्भव और विकास पर बात करने से पूर्व हमें यह जानना होगा कि आलोचना क्या है और इसका वास्तविक अर्थ क्या है? आलोचना शब्द पर सर्वप्रथम, संस्कृत के महान वैय्याकरण पाणिनी ने विचार किया है। उन्होंने इसे लोचृ धातु से उत्पन्न माना है, जिसका अर्थ होता है-देखना। 'आ समंतात लोचनम, अवलोकनाम इति आलोचनम' साहित्य के संदर्भ में यह समालोचना के लिए भी प्रयुक्त होता है। हिन्दी में आलोचना शब्द अंग्रेजी के क्रिटिसिज्म शब्द के प्रयाय के रूप में जाना जाता है। आलोचना अपने संकीर्ण अर्थों में केवल रचना के व्याख्या विश्लेषण तक ही सीमित रहती है। लेकिन अगर व्यापक अर्थों में देखा जाए तो आलोचना, रचना के माध्यम से समाज के इतिहास, सभ्यता एवं संकृति का परीक्षण करती है, और साहित्य के साथ साथ सामाजिक विकास के राह को खोलती है। साहित्य के लिए क्या ग्रहणीय है और क्या त्याज्य है, इसे भी हम आलोचना के माध्यम से ही जान कते हैं। आलोचना के माध्यम से एक प्रकार हम 'सभ्यता समीक्षा' करते हैं।

जब हम हिन्दी आलोचना कि बात करें तो इसे 150 वर्षों से अधिक पुराना नहीं माना जा सकता, लेकिन ऐसा नहीं है कि यहाँ आलोचना की कोई परंपरा ही नहीं थी। हमारे यहाँ संस्कृत आलोचना की एक समृद्ध परंपरा थी और उसमें आलोचना के सैद्धान्तिक पक्षों पर काफी विचार विमर्श भी किया गया है। रस सिद्धान्त, अलंकार सिद्धान्त, रीति सिद्धान्त, वक्रोक्ति सिद्धान्त, ध्वनि सिद्धान्त, औचित्य सिद्धांत आदि इसी की देन हैं। लेकिन कालांतर में इन मौलिक लेखन का अनुकरण मात्र रीतिकाल में किया गया, जो लक्षण ग्रन्थों और टीकाओं के रूप में हमारे सामने आते हैं। लेकिन इनमें नयापन अथवा मौलिकता का प्रायः अभाव ही दिखता है।

हिन्दी की आधुनिक आलोचना की शुरुआत 'भारतेन्दु युग' से मानी जाती है। जिसे 1850ई॰ से 1900ई॰ तक माना गया है। अन्य गद्य विधाओं की तरह आलोचना की भी शुरुआत भारतेन्दु काल में ही होती है। इस कालावधि के आसपास यहाँ के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए, इन परिवर्तनों में 1857 की क्रान्ति और नवजागरण का विशेष महत्व था। मुद्रण कला के विकास से नवीन ज्ञान-विज्ञान का प्रसार तेजी से हुआ और इसके लिए गद्य अनिवार्य था। इस काल में ही हिन्दी पत्रकारिता का जन्म हुआ, जिसके फलस्वरूप विभिन्न हिन्दी पत्रिकाओं यथा – कविवचन सुधा, हिन्दी प्रदीप, हरिश्चंद्र मैगजीन, आनंद कादंबिनी, ब्राह्मण आदि का प्रकाशन आरंभ हुआ। इन पत्रिकाओं में प्रकाशित निबंधों और पुस्तक समीक्षाओं के रूप में आलोचना का आरंभ हुआ। यही समय था जब हिन्दी के साहित्यकारों ने अंग्रेजी लेखों का हिन्दी में अनुवाद किया, जिससे पश्चिमी चिंतन धारा का भारतीय चिंतन धारा से संवाद हुआ, और सोचने विचारने की एक नयी पद्धति की शुरुआत हुई। जो साहित्य पहले कुछ खास वर्ग के लोगों तक सीमित था, उसे इस युग में व्यापक प्रसार मिला, इसीलिए तो इसी समय पंडित बालकृष्ण भट्ट ने 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है' नामक निबंध लिखा, जिसमें साहित्य को समाज सापेक्ष देखने की शुरुआत हुई।। अगर हम हिन्दी आलोचना की पहली सैद्धान्तिक पुस्तक की बात करें तो उसमें भारतेन्दु के 'नाटक' निबंध का जिक्र करना महत्वपूर्ण होगा। इसमें भारतेन्दु जी ने भारतीय और पाश्चात्य संदर्भों में नाटक और रंगमंच की व्याख्या की है, जो नाट्यालोचन की सैद्धांतिकी को हमारे सामने प्रस्तुत करती है। 'संयोगिता स्वयंवर' नाटक की पुस्तक समीक्षा प्रथम व्यावहारिक आलोचना के रूप में हमारे सामने आती है। इस समय भारतेन्दु के अलावे बालकृष्ण भट्ट, प्रेमघन, गंगा प्रसाद अग्निहोत्री, प्रताप नारायण मिश्र आदि साहित्यकारों ने अपनी लेखनी से आलोचन कार्य को और विस्तार दिया।

जब हम द्विवेदीयुगीन परिस्थितियों की बात करें तो हम देखते हैं, कि भारतेन्दु के समय में विभिन्न पत्र- पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ। लेकिन ये पत्र-पत्रिकाएँ ज्यादा दिनों तक नहीं चल सकी। इसका प्रमुख कारण आर्थिक अभाव और सजग पाठक वर्ग का अभाव था। विभिन्न प्रकाशकों द्वारा उत्साह में आकर, जन चेतना की जागृति के लिए पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन तो शुरू हुआ, लेकिन ये उत्साह ज्यादा दिनों तक नहीं रह पाया। द्विवेदी युग में भी कमोबेश यही स्थिति रही। जनता में पैसे देकर किताब पढ़ने का चलन नहीं था। जनता का एक बड़ा वर्ग उस समय इसके लिए पैसे खर्च नहीं करना चाहता था। गंभीर साहित्य को लोग खरीदना तो दूर, पढ़ने से भी कतराते थे। हालांकि कुछ लोगों का इस ओर रुझान बन रहा था। ऐसे में सबसे ज्यादा जरूरी था, लोगों में पाठ्य सामग्री के प्रति रुचि जागृत करना। महावीर प्रसाद द्विवेदी और तदयुगीन रचनाकारों ने विभिन्न विषय सामग्री के संकलन और प्रकाशन कर एक उदाहरण प्रस्तुत किया। वे यह जानते थे कि अगर जनता की रुचियों का परिष्कार करना है, उसे राष्ट्रीय चेतना से जोड़ना है, या फिर उसे पाश्चात्य चिंतन से ही क्यों न जोड़ना हो, इसके लिए 'सत्साहित्य' का पारायण बहुत जरूरी है। द्विवेदी जी ने सरस्वती के सितंबर 1908 के अंक में 'अंग्रेजों का साहित्य प्रेम' शीर्षक से एक लेख लिखा। उसमें वे लिखते हैं- "जो चीजें अंग्रेजों को पसंद आ गई, उसके लिए खर्च करने में वे बड़ी दरियादिली दिखलाते हैं। वे आश्चर्यजनक, मनोरंजक और शिक्षाप्रद बातें बहुत पसंद करते हैं। इसी से वे खेल-तमाशा, शिकार, अगम्य देशों की यात्रा और जीवन चरित्र संबंधी पुस्तकों के बड़े शौकीन हैं।"1

सरस्वती के प्रकाशन के शुरुआत द्वारा हिन्दी में एक बड़ा पाठक वर्ग तैयार करने की कोशिश की गयी और धीरे धीरे इसे सफलता भी मिली। क्योंकि आर्थिक घाटे में चलकर कोई पत्रिका दीर्घजीवी नहीं हो सकती। एक पाठक वर्ग तैयार करने के पश्चात ऐसी सामग्रियों का संचयन करना था, जो लोगों को साहित्य, संस्कृति और नवीन चेतना से जोड़ सके। उस कड़ी के रूप में उसमें कई अंग्रेजी, लेखकों, कई वैज्ञानिकों के प्रयोगों, पाश्चात्य चिंतकों पर टिप्पणियाँ, उनकी जीवनी आदि का प्रकशन अनुवाद के माध्यम से हिन्दी भाषा में जनता के बीच आने लगा। इसका जनता पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। हिन्दी में ये सब सामग्री बिलकुल नयी थी, कुछ लोगों ने तो उत्सुकतावश इसका सेवन किया वहीं कुछ लोगों ने इसकी गंभीरता और महत्व को समझते हुए साहित्यिक चिंतन से भी जुड़े।

द्विवेदी युग (1900-1918) में हिन्दी में तुलनात्मक और अनुसंधानपरक आलोचना का विकास हुआ। मिश्र बंधुओं द्वारा लिखा गया 'हिन्दी नवरत्न' इसी समय प्रकाशित हुआ। 'हिंदी नवरत्न' की लम्बी भूमिका में मिश्रबंधु समालोचना की आवश्यकता और हिन्दी जगत में इसके अभाव पर बात करते हुए 'भाषा साहित्य का इतिहास' का भी जिक्र करते हैं, इसके बाद नौ कवियों पर केन्द्रित अध्याय हैं, इनमें मध्यकाल से लेकर आधुनिक काल तक के एक-एक कवि को रखा गया है। उनके मूल्यांकन के आधार पर कवियों को क्रम दिया गया है। जो इस

प्रकार है:- पहला स्थान-गोस्वामी तुलसीदास, दूसरा स्थान - महात्मा सूरदास, तीसरा- महाकवि देवदत्त (देव), चौथा -महाकवि बिहारीलाल, पाँचवाँ -त्रिपाठी-बंधु: (क) महाकवि भूषण त्रिपाठी, (ख) महाकवि मतिराम त्रिपाठी छठा - महाकवि केशवदास, सातवाँ - महात्मा कबीरदास, आठवाँ - महाकवि चंदबरदाई (ब्रह्मभट्ट) और नौवाँ स्थान -भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र का है। इस तरह यहाँ नौ की जगह कुल दस कवियों को स्थान दिया गया है। यहाँ कवियों को श्रेष्ठता के आधार पर क्रम दिया गया है। ऐतिहासिक कालक्रम से इस क्रम को कोई मेल नहीं है। यह मिश्र बंधुओं की काव्य-धारणा के अनुसार कवियों की गुणवत्ता पर आधारित है। इसमें कबीरदास और सूरदास के नाम के आगे 'महात्मा' विशेषण है तो कुछ कवियों के नाम के आगे महाकवि विशेषण लगाया है। नवरत्नों में देव का नाम बिहारी से पहले है। अर्थात देव बड़े कवि हैं। देव के बारे में मिश्रबंधुओं ने लिखा- "देव महाराज देश-विदेश घूमे हैं। यह पूर्ण रसिक भी थे। अतः जहां गए, वहाँ की स्त्रियॉं को इन्होंने बड़े ध्यानपूर्वक देखा। इन्होंने प्रत्येक जाति और प्रत्येक देश की स्त्रियों का बड़ा ही सच्चा वर्णन किया है। इनका देश देखकर कहीं कहीं यह संदेह अवश्य उठता है कि संभवतः इनका चाल चलन बहुत ठीक नहीं था।"2 आगे लिखते हैं कि हालांकि 'ये महाशय प्रकृति के भी अच्छे निरीक्षक थे' इससे एक बात तो पता चलता है कि इनके यहाँ 'व्यापकता और गहराई' के जगह स्थूल चित्रण प्रमुखता से था। मिश्रबंधुओं ने अपनी आलोचना में समाजशास्त्रीय आलोचना का सूत्रपात किया है, हालांकि वह अपने प्रारम्भिक चरण में ही दिखाई देता है। वे देव के बारे में लिखते हैं- "देव के बराबर अमीरी का सामान बांधने वाला कोई भी कवि नहीं है, इनके छंदों में हर स्थान पर साज-सामान खूब देख पड़ता है, इससे विदित होता है कि यह महाराज अमीरों में रहते थे।"[4] यहीं से देव बड़े की बिहारी ? का झगड़ा आलोचना जगत में चला, जिसमें तदयुगीन आलोचकों ने बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया। देव और बिहारी के विवाद में पंडित कृष्ण बिहारी मिश्र, पद्मसिंह शर्मा और लाला भगवानदीन का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। इस विवाद से निश्चय ही हिन्दी में व्यवस्थित रूप से तुलनात्मक आलोचना की शुरूआत हुई।

द्विवेदीयुगीन आलोचना का विकास करने में सरस्वती पत्रिका का विशेष योगदान है। सरस्वती पत्रिका का स्वरूप प्रथम वर्ष से ही बहुत व्यापक, सर्व समावेशी और अखिल भारतीय रहा। सरस्वती पत्रिका सिर्फ साहित्य सामग्री के प्रकाशन तक सीमित न होकर भाषा, समाज, आर्थिकी, राजनीति और ज्ञान विज्ञान के लेखों का भी प्रकाशन किया गया जिससे इसे पूरे देश में एक नयी पहचान मिली, और महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पादन काल में इसे बहुत ही विस्तार और लोकप्रियता मिली। डॉ. भवानी सिंह सरस्वती पत्रिका को नवजागरण से जोड़ कर लिखते हैं कि –"यह तो निश्चित है कि नवजागरण केवल 'सरस्वती' और द्विवेदी जी के लेखों तक सीमित नहीं था, फिर भी इनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने नवजागरण को महत्व देते हुए सामाजिक सुधारों, मर्यादावादी दृष्टिकोण और संस्कृति से संबन्धित लेख लिखे। इतना ही नहीं इन्होंने भाषा परिष्कार के क्षेत्र में महावपूर्ण कार्य किया, जिसका खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने में बहुत बड़ा योगदान था। सरस्वती पत्रिका ने द्विवेदी जी के संरक्षण में भाषा और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में नवजागरण को फैलाया और नए युग के निर्माण का कार्य किया।"[5] इस प्रकार हम देखते हैं कि सरस्वती पत्रिका ने अपने माध्यम से साहित्य, समाज संस्कृति और आधुनिकता का संश्लेष कर साहित्य चिंतन को एक दिशा दी। 1897 से प्रकाशित होने वाली नागरी प्रचारिणी पत्रिका का भी द्विवेदीयुगीन आलोचना के विकास में महत्वपूर्ण हाथ है। इस पत्रिका के माध्यम से हिन्दी में अनुसंधानपरक आलोचना का आरंभ हुआ। द्विवेदी युग हिन्दी में तुलनात्मक आलोचना का उद्भव काल के रूप में जाना जाता है, इस समय में हिन्दी देव और बिहारी संबंधी विवाद ने तुलनात्मक आलोचना का भरपूर विकास किया और इसी कारण आगे के भी तुलनात्मक आलोचना के लिए इस युग की आलोचना को आधार बनाया गया। लेकिन इस सबसे जो महत्वपूर्ण बात इस समय कि हामरे सामने आती है, वह है रीतिकाल का मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन कि समस्या। हिन्दी नवरत्न पुस्तक में मिश्रबंधुओं ने तुलसी, सूरदास और कबीर को महात्मा बताकर उनपर टीका टिप्पणी करने का साहस तो नहीं किया लेकिन देव, बिहारी, भूषण, मतिराम और केशव को वास्तविक कवि मानकर रीतिकाल के कवियों के मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन का क्रम चलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आचार्य शुक्ल से पूर्व रीतिकाल पर इस तरह का विवेचन और विश्लेषण हिन्दी साहित्येतिहास की एक महत्वपूर्ण परिघटना थी। इस घटना को हम रीतिकालीन कवियों के पाठानुसंधान और रीतिकाल के महत्व निर्धारण की पूर्व पीठिका के तौर पर अवश्य देख सकते हैं। रीतिकाल के पुनर्मूल्यांकन में सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', विजयदेव नारायण साही और डॉ. नगेन्द्र आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार "अन्वेषण और अनुसंधानपरक आलोचना का विकास 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (1897) के प्रकाशन से हुआ। मिश्रबंधु विनोद (1913) में भी शोधपरक दृष्टि को महत्व दिया गया था और कवियों के वृत्त संग्रह के साथ उनकी प्राप्य-अप्राप्य कृतियों की सूचना तथा उनके काव्य के संबंध में मत भी प्रकाशित किया गया था। ..... 1902 में चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने जयपुर से समालोचक पत्र निकाला था, यह गंभीर आलोचना का पत्र था।"[6]

इस प्रकार द्विवेदी युग में हिंदी आलोचना विभिन्न पद्धतियों को विकसित करती हुई उत्तरोत्तर शक्ति सम्पन्न हुई। इसी युग में पाश्चात्य साहित्य से परिचित होकर और उसका स्वस्थ प्रभाव ग्रहण कर हिंदी आलोचना ने स्वतंत्र व्यक्तित्व प्राप्त किया और इसमें कवि-विशेष के सामान्य गण-दोष के विवेचन के साथ ही रचना की गहरी छान-बीन, देश और समाज के परिप्रेक्ष्य में साहित्य की उपयोगिता और मूल्यवत्ता को परखने की प्रवृत्ति विकसित हुई।

कुल मिलकार देखें तो द्विवेदीयुगीन आलोचना ने परवर्ती आलोचना और परवर्ती साहित्य को गहरे तक प्रभावित किया है। इस समय आलोचना के जो प्रतिमान विकसित हो रहे थे वे भविष्योन्मुखी दृष्टि के थे। आलोचना में जो विकास हो रहा था वह साहित्य के वृहत उद्देश्यों को लेकर आगे बढ़ रहा था, ऐसे में निश्चय ही द्विवेदीयुगीन आलोचना आगामी आलोचना को समझने और देखने के लिए नए टूल्स प्रदान करती है। इनमें समाज के दलित और शोषित तबके को साहित्य का विषय बनाने से लेकर ज्ञानराशि के प्रसार और ज्ञानार्जन के तत्व सभी जगह बिखरे पड़े हैं। यह दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि आज भी द्विवेदीयुगीन आलोचना साहित्येतिहास में अपने सार्वकालिक और सार्वदेशिक मूल्यों के लिए प्रासंगिक है, और भविष्य में भी रहेगा। द्विवेदीयुग ही आलोचना की वह जमीन है, जो आचार्य शुक्ल के लेखन को जन्म देने में सहायक है।

संदर्भ सूची

1. सं-भारत यायावर; महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली भाग-4, पृ-51
2. मिश्रबंधु; हिन्दी नवरत्न; पृ. 230
3. वही पृ. 230
4. गगनाञ्चल पत्रिका, नवंबर-दिसंबर 2013, पृष्ठ -10
5. डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल; हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-505-506
6. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास
7. हिन्दी आलोचना; विश्वनाथ त्रिपाठी